

सवाल व्यवस्था का नहीं, सम्पूर्ण व्यवस्था का है

□ शम्भूलाल दोषी

अभी पिछले सप्ताह एक अमेरिकन लड़की से मिलना हुआ। वह हमारे देश में आई है। कोई सैर-सपाटे के लिये नहीं और न शैलाभी की तरह। आई है हिन्दुस्तान के गांव में सेवा कार्य करने। कौकृत में उसने बताया कि अमेरिका में वह चित्रितसा विज्ञान की स्नातक छात्रा है और दो सेमेस्टर पूरे करने के बाद यहाँ आई है। यहाँ सब भ्रम रहेगी। गांवों में सेवा करेगी। पुनः लौटकर अपने अध्ययन में जुट जायेगी। और यह सब 'पागलपन' वह अपने खर्च से कर रही है। उसके माता-पिता कोई धनाढ्य नहीं हैं—सिर्फे खाते पीते हैं। लड़की ने अपनी पढ़ाई के साथ कुछ कमाया भी। और उसी धन की धन-राशि को लेकर वह यहाँ हिन्दुस्तान के गांवों में आई है। मनुष्यता के साथ वह अपना फल समझती है और उसी के प्रयोग में धन निकल आई। इस लड़की का यह वाक्य कई प्रश्न पैदा करता है। इन प्रश्नों में बुनियादी प्रश्न यह है कि अमेरिकी सामाजिक व्यवस्था में ऐसे कौन से आधार तत्व हैं जो इस लड़की को थोड़े समय के लिये पढ़ाई से हटाकर दूर-दराज के देश में सेवा के लिये फेंक देते हैं? इस लड़की के इस 'जन्म' को इसकी सामाजिक व्यवस्था में खोजना पड़ेगा।

एक दृष्टि हिन्दुस्तान का भी है। इसे देखिये : हमारे आदमी यदि बन पड़े तो वह मुँह पर ओढ़ाये हुए नक़्क़न को से जाकर अपने जाँघिये बना लेगा। घर से लेकर चौराहे तक, गांव की चौपाया से लेकर राजधानी तक, परिवार से लेकर जाति तक, कहीं भी देखिये उसके सम्बन्धों का घेरा चिनीता है। जीवन के मूल्य इसके लिये किताबी बन गये हैं। और वह एकदम 'भ्यावहारिक'। अपनी इस

ब्रासबी के लिये उसे गुप्तता न आता हो, ऐसा नहीं। वह इस मुद्दे को कभी-कभार उतारता भी है। घर में बच्चों को पीठटा है, पत्नी को बोरे हाथों सेबा है। बाजार, दफ्तर में, ग्राहक और बाँस पर झुंझलाता है। जालि, गिरावरी कहीं भी उसे देखिये, उधका हुआ लगता है। उसकी कोई एक रंग नहीं, बनेक रंगों एक साथ दिखती है। पर वह कभी भी अपनी व्यवस्था को जिसका वह आसीन है, विषे उसने स्वयं बनाया है, जिसे वह स्वयं जीवित रख रहा है, चुनौती नहीं देता। वह व्यक्तियों पर अपना कोप उतारता है, व्यवस्था को उसकी संरचनाओं को नहीं झकझोता और यही उसकी वासवी का मूल है।

आज हमारी बहस का सारा दारोभार राजनैतिक व्यवस्था है। हम किसी भी स्थानीय, प्रांतीय या राष्ट्रीय हितों पर बिना राजनीतिक संबंधों के टिप्पणी नहीं कर सकते। हमारी बात का लहजा ही राजनीति है। इससे आगे बात सरकती ही नहीं। सगदा है, भारतीय जीवन का केन्द्र ही राजनीति है। जय संसदीय-व्यवस्था और कक्षाधीन-व्यवस्था का बहस चल रही है। देश के बौद्धिक काम, जन-जीवन को व्यवस्थाओं का विधान राजनैतिक व्यवस्था में खोज रहे हैं। बीसिस कुछ इस तरह है : हमारी ह्रास की सभी मजदूरियाँ, मंत्रिमार्ग, बेरोजगारी, मरीबी इसी राजनैतिक व्यवस्था के कारण हैं और इसे बदल दिया जाये तो हृष खुलहाल हो जायेगे। देश में अभ्रम-भ्रम हो जायेगा। एक तर्क यह भी दिया जाता है कि व्यवस्था में खराबी नहीं है, वह दुश्स्त है। खराबी इसमें कास करनेवाले व्यक्तियों और उनकी मूँकता की है। व्यक्ति कबल दीजिये, मूँकताएँ पुनः परिचायित कर दीजिये और व्यवस्था बदस्तूर चल पड़ेगी। अपनी बुनियाव में व्यवस्था में खराबी नहीं। इस तर्क के हिमायती भी पुनः-फिर कर हमारी सम्पूर्ण समस्याओं का निराकरण राजनैतिक व्यवस्था में खोजते हैं। तो मोक्षिय यही कहता है कि हमारी आज की पीड़ाओं का सम्बन्ध मूल रूप से हमारी राजनैतिक-व्यवस्था, दल-व्यवस्था, मतदान-प्रक्रिया और विगड्डे-बनते राजनैतिक व्यवहार से जुड़ी हुई है। व्यवस्था की यह बीसिस हमें स्वीकार नहीं है। हमारा तर्क है कि हमारी ह्रास की सामाजिक बीमारियों केवल राजनैतिक व्यवस्था के कारण ही नहीं हैं, सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण हैं। वास्तविकता यह है कि हमारी

सामाजिक-व्यवस्था ही राजनैतिक-व्यवस्था की धनाती है। वह राजनैतिक-व्यवस्था इसी सामाजिक व्यवस्था की एक अंग है। इस सामाजिक व्यवस्था को जब तक नहीं बदला जाता, केवल राजनैतिक व्यवस्था के बदलने मात्र से, लीपा-पोती के सिवाय और कुछ परिणाम नहीं होंगा। अपने तर्कों का हृष थोड़ा विश्लेषण करेंगे।

वह अमेरिकन लड़की जिसका जिज्ञा हमने प्रारम्भ में किया है, उसके व्यवहार का विश्लेषण हम सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में करें। इससे व्यवस्था के आभाव और उसके अर्थ स्पष्ट होंगे। अमेरिका में परिवार व्यवस्था ऐसी है जो बच्चों को अपने पाँवों पर खड़ा होने के लिये जबरूर करती है। परिवार कितना भी धनाढ्य क्यों न हो, बच्चों को तो थोड़ा होश में आने पर खुद अपने पाँवों पर खड़ा होना है। किशोर बच्चे धड़ले से कारखानों, जमीनों और सड़कों पर काम करते हैं। जमाना है, स्कूल या कोलेज की फीस देनी है तो बेहतर करने से कतराना कंसा। वहाँ का बहना परिवार पर निर्भर नहीं है। परिवार तो निष्प-आश्रय मात्र देता है—एक रैक-बसेरा है। करना तो सब बच्चों को ही है। यह एक व्यवस्था परिवार की है। हमारा परिवार बहरी तरह का है। हम बच्चे को दासुन से लेकर रात के बिस्तर के लिये परमान हैं। स्कूल का गृहकार्य भी हमें ही करवाना है। नीकरी के लिये भी हमें किसी तरह जुगाड़ बैठाना है। विवाह का मन्दोबस्त भी हमारे ही माथे है। परिवार के फर्जों की फे-ह्रिस्त बहुत लम्बी है और इस सारी प्रक्रिया में, सामाजिकरण में, हमारे व्यवस्तत्व में यह बात बैठ जाती है कि हमारे कर्तव्य बहुत सीमित हैं। ऐसी व्यवस्थाएँ समाज में हैं जो हमारे लिये कई भव्य वैसाधियाँ तैयार लेकर देती हैं। वह अमेरिकन लड़की जो शाव के बीपाल में परदेसियों के लिये काम कर रही है, अपनी व्यवस्था की उपज है। माँ-बाप ने तो उसे विधवे और पराई बुनियाँ में धकेल दिया है। वहाँ की परिवार व्यवस्था ने इस लड़की को अपने पैरों पर खड़ा कर दिया है। परिवार ही क्यों, यदि विश्लेषण को आगे खींचें तो फरा लगेगा वहाँ की सम्पूर्ण सामाजिक संरचना ही ऐसी है, जो उसे सतत आगे बढ़ने के लिये तैयार करती है।

जब सामाजिक व्यवस्था की चर्चा करते हैं तो हमें इसके विनाशत अर्थ और इसी से मुक्त सम्पत्तियों की व्याख्या

कर्मों पड़ेगी। एक से अधिक व्यक्ति जब अपने तुष्टिकरण या उद्देश्य प्राप्ति के लिये सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं और ऐसा करने में वे सामान्य रूप से स्वीकृत मानक, शून्य या नियमों को परिपालन करते हैं, तो यह व्यवस्था बन जाती है। व्यवस्था में निरन्तरता होती है। इसका जीवन व्यक्तियों के जीवन से सम्बन्ध होता है, यह बुनियादी रूप से पुनरावृत्तिमूलक होती है। सिद्धांत रूप में, किसी भी व्यवस्था की यही व्याख्या है।

हमारे परिवार, घर-आंगन, गाँव-शहर, जाति-विश्वस्रो, कलु-बान्धन, पंचायत-संभव और ऐसी ही अनेक संरचनाएँ सामाजिक व्यवस्था हैं। ये व्यवस्थाएँ व्यक्ति के व्यवहार की नियमित और निगमिन्त करती हैं। यहाँ आकर हमारा अधिक सम्बन्ध होता जाता है कि राजनैतिक व्यवस्था ही सम्पूर्ण जीवन की मूल है। मूल ही सामाजिक व्यवस्था है जिसका अर्थ मात्र राजनैतिक व्यवस्था है। भाषण में सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के बारे में कहा था कि इन व्यवस्थाओं को बदलने या एक भान आधार आर्थिक व्यवस्था है। भारतीय संदर्भ में शायद यहाँ यह भीसिस सही नहीं उतरता। यहाँ जो जाति व्यवस्था ही अधिक व्यवस्था को नियन्त्रित करती है। ऊँची जाति का व्यक्ति तो ऊँचा पैले वाला। ऊँची जाति और पूँजीवाद का यहाँ सह-सम्बन्ध है। हमारे देश के संदर्भ में ऐसा लगता है कि सामाजिक व्यवस्था मूल है और इसे बदल कर हथ आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं को बदल सकते हैं। भाषण इस क्षेत्र में यहाँ सही नहीं उतरता। उच्च की व्याख्या भी यहाँ के सामाजिक-ऐतिहासिक परम्परा में कंठमी पड़ेगी। हमारा आग्रह यह है कि व्यक्ति किसी समुदाय के व्यवहार की व्याख्या सम्पूर्ण और विशाल सामाजिक व्यवस्थाओं से पुनश्च करके नहीं की जा सकती।

अपने मूल में राजनैतिक व्यवस्था जैसी जाँच यह संविधान में है, अपने परिवेश में जतनी विशाल नहीं है, जितनी हमने उसे बना चिन्ता है। संविधान एकाधिक संस्कृतियों को स्वीकार करता है। इसका अर्थ यह है कि विभिन्न भाषा-भाषाई समूह जैसे—बंगाली, उड़िया, गुजराती, पंजाबी अपनी सांस्कृतिक विमानता को रखते हुए देश की मुख्य धारा के अंग बने रह सकते हैं। देश के विभिन्न सम्प्रदायों, धार्मिक समूह की देखते हुए यही एक

विषयसूत्र रास्ता संविधान निर्माताओं के सामने था। असमत्ता आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में किसी भी समूह को सांस्कृतिक क्षेत्र की तरह आज्ञादी नहीं है। आर्थिक और राजनैतिक भ्रम संविधान की मुख्य धारा है। इनसे कोई पृथक् नहीं रह सकता। ऐसी व्यवस्था में जब राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था या क्षेत्रीय सांस्कृतिक व्यवस्था में कोई दखल नहीं देना चाहती जब सामाजिक व्यवस्था कहां से बदलेगी यदि सामाजिक व्यवस्था को बदलना है तो राजनैतिक व्यवस्था कुछ नहीं कर सकती और जब सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलती तो हमारी मुसीबतों का अंत नहीं होता। अतः आज हमें राजनैतिक व्यवस्था के बदलाव को महसूस बनाने के बजाय सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बदलने की बात करनी चाहिये।

आम आदमी राजनीति में नहीं जाता। गाँवों का किसान राजनैतिक व्यवस्थाओं, दलबन्धी, सरकार आदि के सम्बन्ध में यदाकदा ही आता है। उसे राज्य के क्षेत्र में एक बार देना होता है। उसके गाँव में पटवारी और कमीन्कर पुलिस के विषय कोई आता नहीं। राजनैतिक नेता चुनाव के दौर में आते हैं, अवस्था नहीं। ग्रामीण जीवन का बड़ा भाग आर्थिक और सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में घुस जाता है। अतः यदि गाँवों की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया जाये तो हमें अपनी कई मुसीबतों के निरुद्ध हथ पिकार हैं, मुक्ति मिल जायेगी। हमारा तर्क यह है कि हमारी राजनैतिक व्यवस्था खराब है, उसे बदला जाना चाहिये। लेकिन यदि जो भी राजनैतिक व्यवस्था हमें बनायेगी वह भी हमें रास नहीं आयेगी। यह इसलिये कि हमारे सामाजिक व्यवस्था ने हमारे समूहों और व्यक्तिगत की इस तरह गढ़ा है कि हम गरीब व्यवस्था को भी चौपट कर देंगे। किसी भी व्यवस्था को काम से पहले या इसी व्यवस्था को दुबस्त करने से पहले, हमें सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को—परिवार, भूँ, भाषा, धर्म, गाँव, शहर, सभी को, एक तरह से सम्पूर्ण ऐतिहासिक सामाजिकीकरण की पुनः परिभाषित करना पड़ेगा। व्यवस्था के एक ईकाई में कील डोक कर, व्यवस्था के सुधारने की बात करना, निहित स्वार्थों की पूर्ति करना ही है। आम आदमी को गुमराह करने की इससे बड़ी कोई साजिश नहीं हो सकती। वरिजानी और लक्ष्मजी राजनैति में काम करते होंगे। सामाजिक व्यवस्था को बदलना टेढ़ा काम है। □